UNIVERSAL
LIBRARY

OU_176444

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H179.6 M39N Accession No. P. G. H449

Author मशरूवाला, किशोरलाल घनश्यामलाल

Title निर्भयता अनु. काशीनाथ त्रिवेदी 1949.

This book should be returned on or before the date last marked below.

# हमारे हिन्दुस्तानी प्रकाशन

| | |
|---|---|
| गोसेवा | १—८—० |
| दिल्ली-डायरी | ३—०—० |
| रचनात्मक कार्यक्रम | ०—६—० |
| राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी | १—८—० |
| वर्ण-व्यवस्था | १—८—० |
| सत्याग्रह आश्रमका इतिहास | १—४—० |
| आरोग्यकी कुंजी | ०—१०—० |
| राष्ट्रभाषाका सवाल | ०—६—० |
| महादेवभाईकी डायरी (पहला भाग) | ५—०—० |
| अेक धर्मयुद्ध | ०—८—० |
| बापूकी झाँकियाँ | १—०—० |
| हिमालयकी यात्रा | २—०—० |
| जीवनका काव्य | २—०—० |
| औशु ख्रिस्त | ०—१४—० |
| जीवन-शोधन | ३—०—० |
| जड़मूलसे क्रान्ति | १—८—० |
| सयानी कन्यासे | १—०—० |
| गांधीजी | ०—१२—० |
| प्रेम-पन्थ — १ | ०—४—० |
| हिन्दुस्तान और ब्रिटेनका आर्थिक लेन-देन | ०—८—० |
| हमारी बा | २—०—० |
| मरुकुंज | १—४—० |
| बापू — मेरी माँ | ०—१०—० |
| जीवनका सद्व्यय | (छप रही है) |
| महादेवभाईकी डायरी — दूसरा भाग | ,, |
| स्त्री-पुरुष मर्यादा | ,, |

# निर्भयता

लेखक

किशोरलाल घनश्यामलाल मशरूवाला

अनुवादक

काशिनाथ त्रिवेदी

नवजीवन प्रकाशन मंदिर

अहमदाबाद

मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाओी देसाओी
नवजीवन मुद्रणालय, कालुपुर, अहमदाबाद

पहली बार, २,०००
दूसरी बार, ३,०००

तीन आना

जून, १९४९

# दूसरी नज़रमें

सात सालके बाद अिस किताबको फिरसे पढ़ने पर खयाल आता है कि अिसमें जिस प्रकारकी निर्भयताका, अथवा डरको जीतनेका, विचार किया गया है, वह मुहावरेके अभावसे अथवा आत्मविश्वासकी कमीसे तथा लड़ाअीके सरंजाम और माने हुअे शत्रुओंकी शक्तिसे पैदा होनेवाला डर है।

अिस हद तक ये विचार ठीक तो हैं, फिर भी यह अुस सूक्ष्म और आध्यात्मिक निर्भयताका निरूपण नहीं, जो दुनियाकी तमाम विरोधी शक्तियोंके सामने खड़े रहनेकी, चाहे जैसे संकटोंको सहन करनेकी व दुनियाकी स्तुति-निंदासे लापरवाह रहनेकी ताकत देती है और जिंदगीभरकी कमाअी और अिज्जत-आबरू पर पानी फिर जानेकी संभावनामें भी धैर्य बँधाती और अडिग रखती है। वैसी निर्भयता तो सिर्फ अेक परमात्माका विश्वास, शास्त्र और निष्ठाकी भावना तथा अहिंसाकी पराकाष्ठा और सत्यकी मजबूत पकड़से ही पैदा होती है।

हरिश्चंद्र, प्रह्लाद, सॉक्रेटीज़, अीसा वगैरा कअी महापुरुषोंके आख्यानों और चरित्रों परसे अुस निर्भयताकी झलक तो हमें मिलती थी, लेकिन शायद पूरा खयाल नहीं आता था। अिसलिअे अेतबार भी नहीं होता था। गांधीजीने अपने जीवनकार्य और बलिदानसे अुसका नमूना पेश कर दिया है। वह हमारा निर्भयताका मार्गदर्शक हो।

वर्धा, १६-५-'४९ **किशोरलाल घ० मशरूवाला**

# निर्भयता

'आज भी मनुष्यका पहला कर्तव्य है, भयका नाश करना। हमें भयसे मुक्त हो ही जाना चाहिये। जबतक निर्भय न होंगे, हम कुछ न कर सकेंगे। आदमी जबतक डरको अपने पैरों तले कुचल नहीं देता, अुसके सभी कामोंमें गुलामोंकी सी मनोवृत्ति और अूपरका भपका-भर रहता है; अुसके विचार भी गुलामों और कायरोंके-से रहते हैं।'

—'हीरोवर्शिप', कार्लाअिल

मनुष्य निर्भय कैसे हो? अिसका ठीक-ठीक जवाब तो वही दे सकता है, जिसने डरको भलीभांति जीता है। मैं अपने लिअे अिसका दावा नहीं कर सकता। फिर भी अपने जैसोंके साथ विचार करनेका यत्न करता हूँ।

१

अेक क़िस्सा सुना है। किसी पंडितने अेक खलासीसे पूछा: "तुम्हारे बापकी मौत कैसे हुअी?" खलासीने कहा: "अेक बार जब वह जहाज़ पर सवार थे, ज़ोरोंका तूफ़ान अुठा, और तूफ़ानमें जहाज़के साथ वह भी डूब गये।" पंडितने पूछा: "और, तुम्हारे दादा?" खलासी: "सुना है, वह भी डूब ही गये थे, और अुनके साथ मेरे दो चचा भी मर गये थे।" सुनकर पंडित तो दंग रह गये। कहने लगे: "भले मानस, अितना होने पर भी तुम पानीका छन्द नहीं छोड़ते? तुम्हें डर नहीं लगता?" खलासीने पूछा: "महाराज, आपके पिताजीकी मौत किस तरह हुअी थी?" पंडितने कहा: "बहुत ही बूढ़े हो गये थे। कअी दिनों तक बीमार रहे, और घरमें ही अपने बिछौने पर मर गये।"

खलासी : “ अच्छा, और अुनके पिता ? ” पंडित : “ वे भी अुसी तरह बिछौने पर ही मरे । ” खलासी : “ फिर भी आप बिछौने पर सोते हैं ? आपको डर नहीं लगता ? ”

अिन्हीं लोगोंकी विवाह-पद्धतिका भी अेक क़िस्सा सुना है । कहा जाता है, ब्याहके समय पुरोहित कन्यासे पूछता है : “ देखो बहन, यह दूल्हा दरियामें अपनी ज़िन्दगी बितायेगा, मस्तूलपर चढ़ेगा, और वहांसे गिरेगा। तूफ़ान अुठेगा और अुसमें यह घिरेगा । बोलो, यह दूल्हा तुम्हें पसन्द है ? ” कन्या कहती है : “ पसन्द है । ” पुरोहित : “ तो समझो, तुम्हारा ब्याह हो चुका । मैं असीस देता हूँ । ”

अेक बनियेके लड़केको किसीने कहा : “ दोमेंसे कोअी अेक चीज़ पसंद कर लो : या तो अँधेरी रातमें दस हज़ार रुपयोंकी थैली लेकर अेक भयावने जंगलको पार कर आओ और थैलीके मालिक बन जाओ; या पूर्वी अफ्रीका-जैसे किसी कमाअीवाले देशमें हज़ार रुपये लेकर चले जाओ और अपनी तक़दीर आज़मा लो ! बोलो, क्या पसन्द करते हो ? ” लड़केने छूटते ही कहा : “ दूसरी चीज़ ” । अँधेरी रातमें अितनी बड़ी रक़मके साथ अकेले जंगल पार करना अुसे ज़्यादा मुश्किल मालूम हुआ । अगर किसी राजपूतके लड़केसे यही सवाल किया जाता, तो शायद वह पहली चीज़ पसंद करता । हज़ार रुपयेकी पूँजी पर रोज़गार करनेकी बातमें शायद अुसे डर मालूम होता ।

देहातियोंको अँधेरी रातमें बिना चिराग़के कहीं भी जानेमें कोअी खटका नहीं मालूम होता । शहरवाले अपने मकानके अहातेमें भी बग़ैर चिराग़के जानेकी हिम्मत नहीं करते । जंगलों और पहाड़ोंमें रहनेवाले लोगोंको शेर वग़ैराका अुतना डर नहीं लगता, जितना देहातियों और शहरियोंको लगता है ।

दूसरी तरफ़, अगर किसी देहातीको कलकत्ता या बम्बअी-जैसे शहरमें लाकर अकेला छोड़ दिया जाय, तो वह अिस क़दर घबरा जायगा, मानो जंगली जानवरोंके बीच छोड़ दिया गया हो !

अिन सब अुदाहरणोंसे यह मालूम होता है कि जिस प्रकारके जीवन और परिस्थितियोंका हमें पीढ़ी दर पीढ़ीसे संस्कार अथवा अच्छा मुहावरा होता है, अुस जीवन और परिस्थितिमें पाये जानेवाले संकटोंसे हम नहीं डरते। लेकिन अुससे दूसरी तरहके जीवन और परिस्थितिमें हमें डर लगता है, फिर भले ही अुस दूसरे प्रकारमें दर असल डरने लायक कोअी चीज़ न भी हो।

अिससे अेक सबक़ यह सीखा जा सकता है कि जिस तरहके जीवन और परिस्थितिसे हमें डर लगता हो, अुसका हमें कुछ अनुभव कर लेना चाहिये। अेक बार, दो बार, दस बार अनुभव करते-करते डर कम हो जाता है।

अिसके कुछ अुदाहरण भी दिये जा सकते हैं। सभी जानते हैं कि तैरना जाननेवाले छोटे-छोटे बालक भी काफ़ी अूँचाअीसे पानीमें कूद लेते हैं; जब कि बड़ा आदमी, जो अिस तरह कभी कूदा न हो, डर जाता है और हिम्मत हार जाता है। लेकिन अगर वह तैरना जानता है और कोअी अुसे अेक बार अूँचेसे पानीमें धकेल देता है, तो अुसे अनुभव हो जाता है और डर मिट जाता है। गुब्बारोंके साथ कूदनेवालोंको अिसी तरह अभ्यास कराया जाता है और अुनका डर मिटाया जाता है। कुछ डर तो अनुभवकी कमीका ही परिणाम होता है। अिस डरको मिटानेके लिअे अनुभव और अभ्यास ये दो ही साधन हैं।

## २

मान लीजिये कि किसी मामूली सिपाहीने बहादुरीका कोअी काम किया है। अेक देहातीने कोअी तारीफ़ करने लायक़ ताक़त बताअी है। दूसरी तरफ़ शहरके रहनेवाले अेक धनी आदमीने, जो ज़्यादा पढ़ा-लिखा नहीं है, बहुत बड़ा दान दिया है। राजा तीनोंका सम्मान करना चाहता है। वह तीनोंको राज-दरबारमें निमंत्रित करता है। वहाँ अुन्हें कोअी सिरोपाव भी दिया जानेवाला है। यों, दर असल मौक़ा खुशी मनानेका

है। फिर भी तीनोंके मनमें अेक ही खलबली मच जाती है। खड़े होते हैं, तो पैर थरथराने लगते हैं। बोलने जाते हैं, तो ज़बान लड़खड़ाने लगती है। दिलमें खुशीका पार नहीं है, लेकिन प्रकटमें सब लक्षण डरके ही नज़र आते हैं। अैसे समय अगर सिपाही यह देख ले कि राजा पर कोअी हमला करने जा रहा है, तो अुसी दम अुसका डर भाग जायगा, और वह अकेला अनेकोंका सामना करनेसे न चूकेगा। अगर देहाती देख लेगा कि मकानकी छत टूटकर राजाके सिर पर गिरा चाहती है, तो वह फ़ौरन दौड़कर अुसकी रोक करेगा। अिसी तरह, अगर अुस समय किसी कठिन आर्थिक प्रश्नकी चर्चा छिड़ जाय, तो सेठजीकी धुकधुकी बन्द हो जायेगी और ज़बान हिलने लगेगी। लेकिन ताज्जुब तो यह है कि जब डरका कोअी मौक़ा नहीं, आनन्दका अवसर है, अुस वक़्त तीनों डरते हैं!

अिन मिसालोंसे मालूम होता है कि किस तरह जहाँ खतरा नहीं रहता, अुलटे आनन्दका अवसर होता है, वहाँ भी आदतके अभावमें डर लगता है और जहाँ दर असल खतरा है, वहाँ आदतके कारण डर कैसे भाग जाता है।

अिससे यह अनुमान होता है कि डरका सम्बन्ध जितना अनुभवके नयेपन और परिस्थितिका सामना करनेकी कमज़ोरीसे है, अुतना खुद डर या खतरेसे नहीं है। सचमुच जहाँ खतरा हो, वैसी परिस्थितिमें भी मनुष्य निर्भय रह सकता है और बिलकुल सही-सलामत हालतमें भी डरकी-सी घबराहटका अनुभव कर सकता है।

अिसलिअे कमसे कम कुछ भयोंके बारेमें हम यह कह सकते हैं कि नये अनुभवके अवसर पर अुसकी हमारे मन पर जो पहली कुदरती चोट होती है, वही डर है। कुदरती चोटके मानी हैं : मनुष्यकी अिच्छाशक्ति या विवेकबुद्धिके सजग होनेसे पहले मन पर पड़नेवाला असर।

जब दुबारा फिर वैसा अनुभव होता है, या होनेकी सम्भावना होती है, तो आदमीकी अिच्छाशक्ति या तो प्रतिकूल बनकर अुस प्रभावको रोकनेकी कोशिश करती है, या अनुकूल बनकर अुसका पोषण

करनेके यत्नमें लग जाती है। पहले प्रकारके यत्नमें बादका हरअेक अनुभव पहलेके अनुभवकी तुलनामें कम आघात पहुँचाता है, यानी वह डरको घटाता जाता है। दूसरे प्रकारके यत्नमें हर अनुभव डरको तो कम करता ही है, लेकिन वैसे अनुभवों और वैसी परिस्थितिसे अरुचि होनेके कारण आदमी अुन अनुभवों और परिस्थितियोंको टालनेकी ही कोशिशमें रहता है। जैसे, मान लीजिये कि अेक लड़का तैर तो सकता है, लेकिन पानीमें कूदनेकी हिम्मत नहीं कर पाता। अुसका साथी अुसे धकेल देता है। तब पहली बार तो अुसे डर भी लगता है और शायद वह घबरा भी जाता है। लेकिन अगर अुसकी दिली अिच्छा यह हो कि कूदना तो आना ही चाहिये, कूद न सकना शर्मनाक है, और साथ ही वह यह भी अनुभव करे कि जितना डरता था, दर असल अुतना डरनेकी कोअी बात न थी, अुल्टे कुछ मज़ा ही आया, तो दो चार बारके अनुभवके बाद वह डरना भूल ही जाता है। लेकिन यदि अुसकी अिच्छाशक्ति कूदनेके पक्षमें न हो, अैसे 'साहस' को वह 'नादानी' समझता हो, और तिस पर, अधूरेमें पूरा, कहीं कूदते समय थोड़ी-बहुत चोट आ जाय, या मुँहमें थोड़ा पानी चला जाय, तो मुमकिन है कि हरअेक नये अनुभवके फलस्वरूप, डरका कोअी कारण न रह जाने पर भी, अुसके मन पर कूदनेके बारेमें अरुचिके ही संस्कार मज़बूत होते चले जायँ।

## ३

यह दूसरी बात खास तौर पर विचार करने लायक है: अकसर बालकोंकी परवरिशका हमारा तरीक़ा ही अुन्हें डरपोकपनकी तालीम देनेवाला होता है।

पूज्य गांधीजीने अपने डरपोकपनका कअी बार ज़िक्र किया है। वे कहते हैं कि बचपनमें अुन्हें अँधेरेमें कहीं जाते डर लगता था। साँप और बिच्छूसे वे हमेशा डरते रहे हैं। अिस डरसे बचनेके लिअे

अुनकी धायने अुन्हें 'राम-रक्षा'का पाठ सिखाया था। 'राम-रक्षा' के पाठकी श्रद्धासे अुन्हें थोड़ा-बहुत आश्वासन चाहे मिला हो, लेकिन अुससे अँधेरेका और साँप-बिच्छूका डर तो दूर नहीं हो पाया — अिनके प्रति मनमें अरुचि बनी ही रही। यही हालत मेरी भी थी। लेकिन मुझे साँप और बिच्छूकी अपेक्षा चोर, "बाबा"* और पुलिसका डर ज़्यादा लगता था। अिस डरको मिटानेके लिअे मैं हनुमान-स्तोत्र पढ़ा करता था और कल्पना किया करता था कि रातको हनुमानजी आकर मेरे घरके चारों ओर पहरा देते हैं। अपनी अिस श्रद्धाके बल मैं निर्भय रहनेकी कोशिश करता था। अब बाबा और पुलिससे तो डरनेकी कोअी वजह रही नहीं, फिर भी जब खूब गहरा पैठकर अपने मनकी पड़ताल करता हूँ, तो आज भी मनमें अुन लोगोंकी पोशाक और दिखावेके प्रति अरुचि पाता हूँ। अिसी तरह हालाँकि प्रत्यक्ष जीवनमें जेलके बाहर चोरसे सिर्फ़ अेक ही बार भेंट हो पाअी है, तो भी सपनेमें चोरको देख पाता हूँ तो डर जाता हूँ।

'राम-रक्षा' या 'हनुमान-स्तोत्र' या 'नारायण-कवच' के पाठसे भयको भगानेकी शिक्षा देनेवाले गुरुजनोंकी अपनी श्रद्धा तो अच्छी ही रही होगी। लेकिन मनुष्यकी अपनी अिच्छाशक्तिको दृढ़ बनानेकी दृष्टिसे यह शिक्षा अुचित नहीं कही जा सकती। यह समझाने और संस्कार डालनेके बजाय कि साँपसे, बिच्छूसे, बाबाजीसे, पुलिससे या अँधेरेसे डरनेकी कोअी बात नहीं है, अकसर वे खुद अुनका नाम लेकर डराते थे और मन पर यह संस्कार दृढ़ करते थे कि ये सब सचमुच ही डरावने हैं और सिवा भगवान्के दूसरा कोअी अिनसे बचा नहीं सकता।

भयका यह संस्कार किस तरह जड़ पकड़ता है, अिसका अेक दूसरे ढंगका अुदाहरण श्रीकृष्णदासजी जाजूके अनुभवसे लेकर यहाँ देता

---

* लम्बी दाढ़ीवाले बैरागी जिनके बारेमें हमें यह बतलाया जाता था कि वे छोटे-छोटे बच्चोंको पकड़कर ले जाते हैं, या अुनपर भभूत डालते हैं, जिससे बच्चे अपनेआप अुनके पीछे-पीछे चले जाते हैं।

हूँ। वे कहते हैं कि बाज़ दफ़ा अुन्हें सपना आता है कि वे कहीं सफ़र पर निकले हैं, और बीचमें रास्ता भूल जानेके कारण खूब परेशान हुअे हैं। अिसे समझाते हुअे वे अपने बचपनका अेक प्रत्यक्ष अनुभव सुनाते हैं। बचपनमें वे अपने परिवारके लोगोंके साथ रामेश्वरकी यात्राको गये थे। वहाँ सुबह पाखाना फिरनेके लिअे वे समुद्रकी ओर गये। लौटते समय दिशाका खयाल न रहा और ग़लतीसे अुलटी दिशामें चल पड़े। कुछ देर चलने पर जब परिवारके कोअी आदमी नज़र नहीं आये, तो घबराये। बादमें बड़ी परेशानीके बाद रास्ता मिला और वे सहीसलामत अपनोंके बीच आ पहुँचे। वे सोचते हैं कि अिस अनुभवकी अुनके मन पर कोअी अैसी गहरी छाप पड़ गअी है कि अुसीके कारण अुन्हें अब भी अिस तरहके सपने आते रहते हैं। दुबारा फिर वैसी यात्राका कोअी अवसर ही नहीं आया। मुमकिन है कि अिस अनुभवके कारण अुनको अिस तरहकी यात्रामें कोअी रुचि ही न रह गअी हो। अगर दुबारा वैसी यात्राका अवसर प्राप्त हुआ होता, या अुसके लिअे कोशिश की जाती, तो संभव था कि यह डर दिलसे निकल जाता।

अिन अुदाहरणोंसे यह साफ़ मालूम होता है कि संकटके प्रत्यक्ष अवसरका और संकटकी कल्पनाका डरके साथ किस तरहका सम्बन्ध है। संकटका प्रत्यक्ष अवसर पहले अनुभवमें जितना भयजनक होता है, अुतना दूसरे अनुभवमें नहीं होता। बल्कि, जैसे-जैसे अिन अनुभवोंकी संख्या बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे वे हमें संकटके प्रति लापरवाह और मज़बूत बनाते जाते हैं। अिसके खिलाफ़, अगर कोअी पहले कड़ुअे अनुभवको या अनुभवके अभावमें मात्र अुसकी कल्पनाको ही अेक अरसे तक दृढ़ करता रहे, तो साहस करने और भय पर विजय पानेकी अुसकी शक्ति कमज़ोर होती जाती है।

सोचनेसे सहज ही पता चल जाता है कि अँधेरेका अथवा चोर, डाकू, साँप, बिच्छू वग़ैराका जो डर हमारे मनमें घुसा रहता है, अुसके लिअे प्रत्यक्ष अनुभवका आधार कितना है? लाखों नहीं, करोड़ों लोग

हररोज़ अँधेरेमें रहते और अँधेरेमें ही आते-जाते हैं। सैकड़ों घरोंमें चिराग़ नामकी कोअी चीज़ ही नहीं होती। कितने गाँवोंमें रातको सड़कों पर अुजेला मिलता है? रखवाले लालटैन लेकर खेतोंकी रखवाली करने नहीं जाते। लोग नंगी ज़मीन पर, बिना चादर या कम्बल बिछाये ही सोते हैं। फिर भी अुनमेंसे कितने लोगोंको और कितनी बार अँधेरेमें किसी दुर्घटनाका सामना करना पड़ा है, या साँपने डँसा है, बिच्छूने काटा है, अथवा चोर-डाकुओंने लूटा है? जितनी दुर्घटनायें रोज़ मोटरकी सुननेमें आती हैं, अुनके मुक़ाबले साँप-बिच्छूके काटनेकी या चोर-डाकूके लूटनेकी संख्या कितनी है? तिस पर भी कितने आदमी हैं, जो मोटरकी दुर्घटनाओंसे डरकर अुनमें बैठना या अुनकी दौड़-धूपवाले रास्तों पर चलना छोड़ देते हैं? गुजराती परिवारोंमें प्राअिमस स्टवकी छोटी-बड़ी दुर्घटनाओंको आँखों देखने या स्वयं अनुभव करनेके अुदाहरण स्टवका अुपयोग करनेवाले हर घरमें मिल सकते हैं। बम्बअीके सहृदय कॉरोनर साहबको तो न जाने कितनी बार स्टवका अुपयोग न करनेकी सलाह देनी पड़ी है। फिर भी स्वभाव ही से भीरु मानी जानेवाली ये बहनें अुसका अुपयोग करते नहीं डरतीं। कारण, कल्पनामें अिन सबका जितना भय मालूम होता है, अुतनेके लिअे सचमुच अनुभवका कोअी आधार नहीं।

## ४

अूपरके अिस विवेचनसे हम भयवृत्ति और अिच्छाशक्तिके भौतिक स्वरूपका कुछ अंदाज़ लगा सकते हैं।

टेलीफोनका अुपयोग करनेवालोंने अकसर यह अनुभव किया होगा कि जिस नंबरको जोड़नेके लिअे हम डायल घुमाते हैं, वह नम्बर तो नहीं जुड़ता, और अुसके बजाय दूसरा ही कोअी नम्बर जुड़ता रहता है। कभी-कभी यह भी अनुभव होता है कि हमें कनसींगे (रिसीवर) में दूसरे किन्हीं दो आदमियोंके बीचकी बात सुनाअी पड़ती है, और कभी-

कभी तो हम यह सोचकर कि हमारा आदमी ही बोल रहा है, अुसे जवाब देनेकी ग़लती भी कर बैठते हैं। हमारी अिच्छाके विरुद्ध दूसरे नम्बरका जुड़ना या हमारी बातोंके बीच दूसरोंकी बातचीतका सुनाअी पड़ना, बीचके तारोंमें अुत्पन्न किसी गड़बड़ीका नतीजा होता है। फोनके कार्यालयमें खबर करनेसे वहाँका कर्मचारी तारोंकी जाँच करके खराबीको दुरुस्त कर देता है।

हमारा शरीर भी कुछ अिसी तरहका अेक यंत्र है। बाहर जो घटनायें घटती हैं, अुनके पहले आघातसे अुत्पन्न होनेवाली वृत्तियाँ हमारी अिच्छा-शक्तिसे स्वतंत्र होती हैं। अगर घटनाओंका यह अनुभव बिलकुल नये प्रकारका हुआ, तो हमारे लिअे सुखदायी होते हुअे भी, अुसका सामना करते समय मनमें थोड़ी घबराहट — आत्मविश्वासकी थोड़ी कमी — का अनुभव होता है। परिस्थितिका सामना करनेमें आत्मविश्वासकी कमीको ही हम दूसरे शब्दोंमें डर कह सकते हैं।

यह केवल शारीरिक यानी यांत्रिक परिणाम है। अर्थात् जिस तरह फोनके तारोंमें अव्यवस्था पैदा होनेसे नम्बरोंकी गड़बड़ होती है, अुसी तरह यह भी हमारे ज्ञानतंतुओंमें अुत्पन्न अेक अूपरी गड़बड़ है।

तब सवाल अुठता है कि यह गड़बड़ सुधार ली जाय या निबाह ली जाय? दोनों बातोंका आधार हमारी अिच्छाशक्ति पर है। या तो हम अिस भयको जीतने और आत्मविश्वास प्राप्त करनेकी कोशिश कर सकते हैं, या अिसका पोषण करके आत्मविश्वासको बिलकुल खो सकते हैं।

अगर हमारा प्रयत्न पहले प्रकारका होता है, तो हम थरथराते हुअे भी अपने अन्दर साहस पैदा करते हैं, अपनी सारी ताक़त बटोरते हैं, और भयावनी परिस्थितिका सामना करते हैं। फिर यह दूसरी बात है कि अैसा सामना हम हिंसासे करते हैं अथवा अहिंसासे। लेकिन हम दुबारा, तिबारा अैसे अवसरोंकी तलाशमें रहते हैं।

अगर अपने किसी संस्कारवश हम आत्मविश्वासको खोनेकी कोशिशमें रहते हैं, तो अपनी कल्पनाशक्तिको अधिक तीव्र बनाकर हम अपने मनमें डरका अुचितसे अधिक भयावना चित्र बना लेते हैं, और वहाँसे अिस तरह खिसक जानेकी कोशिश करते हैं, जिससे वैसे ख़तरेकी परिस्थितिका सामना ही न करना पड़े।

साधुओंमें अेक कथा प्रचलित है: किसी शहरके बाहर अेक साधु पुरुष रहते थे। अेक दिन अुन्होंने हैज़ेकी डाकिनको नगरकी ओर जाते देखा। साधुने अुससे पूछा: 'तुम क्यों जाती हो? और कितनोंको खाना चाहती हो?'

डाकिनने कहा: 'मुझे भूख लगी है; मैं दो सौ मनुष्योंको खाअूँगी।' अुसके बाद फ़ौरन ही शहरमें हैज़ेका दौरा हुआ और क़रीब दो हज़ार आदमियोंके मरने या बीमार होनेके बाद डाकिन लौटती नज़र आअी। साधुने पूछा: 'तुमने यह क्या किया? दो सौके बदले दो हज़ारको खा डाला?' जवाब मिला: 'नहीं, महाराज! मैंने तो सिर्फ़ दो सौ ही खाये हैं। बाकी तो डरसे मर गये। अुनकी मौतके लिअे मैं ज़िम्मेदार नहीं।'

यह है तो अेक कल्पित कहानी, लेकिन अिसमें यह समझानेकी कोशिश की गअी है कि जोखिमकी परिस्थितिके कारण दर असल जितना नुक़सान होता है या हो सकता है, अुससे कहीं ज़्यादा नुक़सान अुसकी कल्पनासे होता है। और यह सच है।

सच है कि कभी-कभी कल्पनाका प्रयोग हिम्मत बनाये रखनेमें, यानी भयवृत्तिको जीतनेमें भी, किया जाता है। अुदाहरणके लिअे, डर मालूम होने पर भी पत जाने या फ़र्ज़ अदा करनेका खयाल न डरनेकी हिम्मत पैदा करता है। अपनी पत या अपने कर्त्तव्यके बारेमें आदमीकी कल्पना जितनी ही तीव्र होती है, अुतना ही वह डरको जीत सकता है। जिस घड़ी संकटकी तुलनामें पत और कर्त्तव्यका महत्त्व कम लगने लगता है, अुसी घड़ी हिम्मत भी जवाब दे देती है। मतलब यह कि

अुचित रीतिसे स्वाभिमान, प्रतिष्ठा और कर्त्तव्यपरायणताकी शिक्षा लेना डरको जीतनेका अेक अुपयुक्त साधन है ।

अिसी तरह योग्य साथियोंका साथ भी निर्भयताको बढ़ानेका अेक साधन है । क अकेला किसी खतरेका सामना करनेकी हिम्मत नहीं करता; ख की भी हिम्मत नहीं चलती, लेकिन अगर दोनोंमें खतरेका सामना करनेकी अिच्छा हो, तो दोनों अेक दूसरेके साथी बनकर वैसी हिम्मत पैदा कर सकते हैं । बादमें दोनोंमें स्वतंत्र रूपसे संकटका सामना करनेकी हिम्मत भी आ सकती है । अिसके खिलाफ़ अगर दोनोंमें खतरेसे दूर भागनेकी वृत्ति हो, तो दोनों मिलकर ज़्यादा डरपोक भी बन सकते हैं ।

५

प्राचीन मनोवैज्ञानिकोंने आहार, काम, निद्रा और भय अिन चार भावोंको प्राणिमात्रका प्राकृतिक धर्म माना है । अर्वाचीन मनोवैज्ञानिक अिनकी संख्या छह या छहसे अधिक भी बताते हैं । अूपरके प्रकरणोंमें मनुष्यके अन्दर पाअी जानेवाली भयवृत्तिके स्वरूपका पता लगानेकी कोशिश की गअी है । संभव है कि अिस यत्नमें कुछ सोचने लायक बातें छूट भी गअी हों । लेकिन जितना विचार किया है, अुससे यह पता चलता है कि भय मनुष्यका अैच्छिक स्वभाव नहीं । यानी, आदमी अपनी खुशीसे भयभीत रहना पसंद नहीं करता । अपने भरसक हर आदमी भयको जीतना चाहता है । अुसकी दिली अिच्छा तो निर्भयता प्राप्त करने की ही होती है । भयवृत्ति अुस पर अुसकी अिच्छाके विरुद्ध हमला करती है । अगर वह अुसे जीतनेका अुपाय नहीं जानता, तो यह भयवृत्ति अुसकी अिच्छाशक्तिको निर्बल बनाकर अुसे भयभीत रहनेका आदी भी बना सकती है । मगर कैसी ही आदत क्यों न पड़ गअी हो, भयवृत्तिको वह अच्छी चीज़ तो कभी नहीं मानता । जिस तरह पुराने या मुद्दती रोगका कोअी रोगी, अुस रोगको सह लेनेका आदी बन जाता है, अुसी

तरह डरनेकी भी आदत पड़ जाती है। हो सकता है कि वह रोगको सह ले, अुसको ध्यानमें रखकर अपनी दिनचर्या बना ले, अुसे मिटानेकी कोशिश भी न करे, और अुस हालतमें भी हँसे, खेले और खुश रहे, और कभी-कभी बुढ़ापे तक पहुँच जाय। फिर भी वह यह तो हरगिज़ न मानेगा कि अुसका रोग अेक अच्छी चीज़ है। अुसके दिलमें पक्का निश्चय तो यही है कि रोग अेक विकार है, शरीरको लगी हुअी अेक तकलीफ़ है, वह स्वधर्म-आत्मधर्म नहीं। अिसी तरह भय भी शरीरके ज्ञानतंतुओंमें होनेवाली अेक बाहरी गड़बड़ है: वैसी ही, जैसी फोनके तारोंको जोड़नेमें कभी-कभी हो जाती है। मनुष्य आहार, काम और निद्राको सुखकी चीज़ मानकर अिन्हें जान-बूझकर बढ़ानेकी कोशिश कर सकता है। अिनके कम होने या न मिलनेसे वह अकुला भी सकता है। लेकिन अैसा कोअी मनुष्य नहीं मिलेगा, जो अपनी भयवृत्तिको हौसके साथ बढ़ानेकी कोशिश करता हो। हाँ, वह दूसरोंकी भयवृत्तिको जान-बूझकर बढ़ानेका यत्न तो कर सकता है, लेकिन अपनी भयवृत्तिको तो वह, रोगकी तरह, मिटानेकी ही अिच्छा रखता है।

भय (संभवनीय खतरेका ज्ञान) और भयवृत्ति (डरकी घबराहट) में भेद है। फलां रास्ते जानेमें चोर-डाकुओंके मिलनेकी सम्भावना है, फलां जंगलमें बाघ हो सकता है, बारिशमें धानके खेतोंमें सांपका खतरा रहता है, अूँची मीनारसे झुककर देखनेमें नीचे गिरनेका डर रहता है, शहर पर दुश्मनोंका हमला होनेका अंदेशा है, वगैरा वगैरा; ये सारे विचार पहलेके अनुभवसे मिली हुअी नसीहतें हैं। अिसमें सिर्फ़ नुक़सान पहुँचानेवाली परिस्थितियोंकी जानकारी है। यह अेक ज़रूरी चीज़ है। अगर यह न हो, तो अिन्सान होशियार न रह सके और हमेशा वारदातोंका शिकार बनता रहे। आम तौर पर खतरनाक परिस्थितिके जानपनको ही भय कहा जाता है, और अिस अर्थमें यह माना गया है कि भय प्राणियोंको आत्मरक्षाके लिअे मिली हुअी अेक हितकर और आवश्यक वृत्ति है।

लेकिन भयवृत्ति (डरकी घबराहट) और संकटकी स्थितिके ज्ञानमें भेद है। अगर हमें संकटकी स्थितिका ज्ञान हो, मगर हममें भयवृत्ति न हो, तो हम अुस स्थितिका सामना करनेके अुपाय सोच लेंगे और होशियार रहेंगे। जितने साधनोंकी ज़रूरत मालूम होगी, अुतने अपने साथ रखेंगे। लेकिन हम न तो अुसका नाम सुनकर थरथरायेंगे, न घबरायेंगे, न वहाँ जानेसे जी चुरायेंगे, और न संकट अुपस्थित होनेसे पहले ही पीठ दिखाकर भागनेका विचार करेंगे। ये सब भयवृत्तिके लक्षण हैं। ये किसी भी दशामें हितकर और आवश्यक नहीं माने जा सकते। अगर मनुष्यमें यही (डरसे घबरानेकी) वृत्ति प्रबल होती, तो मनुष्यजाति संसारमें शायद ही जीवित रह पाती। और प्राणिमात्र पर जो प्रभुत्व आज अुसने प्राप्त किया है, सो तो प्राप्त कर ही न पाती। संकटका ज्ञान होते हुअे भी अुसका सामना करनेके अपने निश्चयके कारण ही मानवजातिका विकास और अुसकी वृद्धि हुअी है, और आज तो मनुष्य मानो भगवान्का छोटा भाअी ही बन बैठा है।

तब अितना तो स्पष्ट है कि संकटकी स्थितिका ज्ञान चाहे आवश्यक और हितकर हो, मगर अुसका डर आवश्यक और हितकर नहीं है। अुल्टे, भयभीत होना रोगग्रस्त होनेके समान है। भयवृत्तिको आहार, निद्रा और कामकी वृत्तिके बराबर समझना ठीक नहीं। मनुष्यके लिअे आवश्यक तो यह है कि अुसे संकटकी परिस्थितिका खयाल हो, और अुसका प्रतीकार करनेके अुपायोंको खोजनेकी शक्ति अुसे प्राप्त हो।

६

खतरोंका विचार करनेपर अुनके तीन मुख्य प्रकार ध्यानमें आते हैं: कुदरती घटनाओंसे अुत्पन्न होनेवाले, दूसरे प्राणियोंके कारण अुत्पन्न होनेवाले और दूसरे मनुष्योंकी ओरसे पैदा होनेवाले।

भूकम्प, बाढ़, और आग वग़ैरा कुदरती खतरोंके बारेमें आम तौर पर डरपोक और निडर आदमियोंकी स्थिति अेकसी होती है। डरपोक

भी अिन खतरोंकी जगहसे भाग नहीं सकता। जहाँ अैसी घटनायें बार-बार होती हैं, वहाँ पहलेसे बचावकी कोअी तैयारी करके रखी जा सकती है। लेकिन जब ये अचानक पैदा हो जाते हैं, तब तो अुसी समय अिनका सामना करना पड़ता है।

दूसरे प्राणियोंसे पैदा होनेवाले खतरोंके बारेमें मनुष्य अधिक स्वाधीन होता है और अुन प्राणियोंकी तुलनामें स्वयं अधिक अनुकूलता रखता है। प्राणियोंको प्रकृतिने जो साधन दिये हैं और जो युक्तियाँ सिखाअी हैं, अुनमें वे फ़र्क़ नहीं कर सकते। मनुष्यने अुनके विरोधमें हज़ारों तरहके साधन बना रखे हैं और वह दूसरे नये साधन भी खड़े कर सकता है।

लेकिन, मनुष्यको मनुष्यसे पैदा होनेवाले खतरोंका सवाल टेढ़ा है। यहाँ भय अुत्पन्न करनेवाला और भयसे बचनेकी कोशिश करनेवाला, दोनों अेक-से प्रगतिशील प्राणी हैं। यानी, अगर अेक दल अेक साधन तैयार करता है, तो दूसरा अुससे बढ़कर साधन ढूँढ़ निकालता है। और जो अैसा नहीं कर सकता, वह भयभीत रहता है। जबतक आदमी भयको सिर्फ़ जानता है, लेकिन अुसके सामने अपनी लाचारी महसूस नहीं करता, तबतक अुसे अुसका त्रास मालूम नहीं होता और वह पुरुषार्थहीन भी नहीं बन जाता। लेकिन जब वह लाचारीके कारण त्रस्त हो जाता है, तो कमज़ोर बन जाता है। फिर वह भय अुत्पन्न करनेवालेकी शरणमें जाता है, अुसकी आज्ञाओंका पालन करता है, अुसके हाथों सब तरहके अपमानोंको सह लेता है और वह जो भी तकलीफ़ देता है, सो सब बरदाश्त कर लेता है।

अिस तरह परस्पर डरना और डराना, अेक-दूसरेको नुक़सान पहुँचाना और निरंतर अुससे बचनेके अुपायोंकी तलाशमें रहना, मानव-जीवनका अेक रोग बन गया है। यह रोग अितना पुराना और अितना सर्वव्यापी बन गया है कि जिस तरह लोग प्रायः अस्पतालों और दवाखानोंकी संख्या गिनानेमें और अुनमें आनेवाले रोगियों और रखी जानेवाली दवाओंके प्रकारोंकी विविधता बतानेमें अभिमान और सभ्यताका अनुभव

करते हैं, अुसी तरह मनुष्य डरानेके और डरसे बचनेके साधनोंकी वृद्धिमें अपनी प्रगति मानता है।

लेकिन, आखिर अिन सबका नतीजा क्या होता है? मसल है कि 'चोरकी चार आँखें और कोतवालकी दो।' यानी किसी भी दशामें आक्रमणके साधन रक्षाके अुपायोंको व्यर्थ बना सकते हैं। केवल बचाव करके जीना सम्भव ही नहीं है। अिसलिअे आखिरकार मनुष्य-मनुष्यके बीचके सम्बन्धोंमें तो बाहरी साधन भय-निवारणके काममें असमर्थ ही साबित होते हैं, और अपनी रक्षाके लिअे अुनपर भरोसा करना कच्चा काम साबित होता है।

अेक दृष्टिसे मनुष्य दूसरे प्राणियोंकी तुलनामें अधिक चतुर है। लेकिन अुसकी अिस चतुराअीने अुसे दो तरहसे प्रकृतिसे अलग कर दिया है: यानी अुसे अधिक संस्कृत और अधिक विकृत भी बना दिया है। और ये संस्कृति तथा विकृति दोनों अेक दूसरेमें अितनी घुलीमिली हैं कि प्रायः दोनों साथ ही साथ पाअी जाती हैं। शायद अभी हमें संस्कृतिका सच्चा स्वरूप ही मालूम नहीं हो पाया है, और अिसीलिअे संस्कृतिके नाम पर हम बहुतेरी विकृतियोंको ही बढ़ा रहे हैं। यह सच न हो, तो भी अिसमें कोअी शक नहीं कि प्राकृत (असभ्य) मानी जानेवाली मानव-जातियोंमें जो अपूर्णता नज़र आती है, अुसके मुक़ाबले अपनेको संस्कृत (सभ्य) माननेवाली जातियाँ कम अपूर्ण नहीं। बल्कि, संस्कृतिका टीला जितना अूँचा अुठता है, अुतना ही अुसकी बगलमें विकृतिका खड्डु गहरा बनता जाता है, और फलतः सुसभ्य जातियाँ सब प्रकारके दुर्गुणोंमें भी प्राकृत या असभ्य जातियोंकी अपेक्षा बढ़ जाती हैं। अिसके कारण मनुष्यको मनुष्यसे ही डर पैदा होता रहता है, और अुसकी बहुत-कुछ शक्ति अेक-दूसरेसे बचने और आवश्यकता पड़ने पर अेक-दूसरेको नुक़सान पहुँचानेके साधनों और युक्तियोंको तलाशनेमें ही खर्च हो जाती है। परस्पर अेक-दूसरेका नाश करना मनुष्यके अनेक संकल्पोंमें अेक

महत्त्वका संकल्प बन बैठा है, और महामारीकी तरह बीच-बीचमें प्रबल हो अुठता है।

जबतक हम आत्मरक्षाके लिअे मारने और बचनेके बाहरी साधनों पर विश्वास रखते हैं, तबतक यह अनर्थ-परम्परा मिट नहीं सकती, और हम निर्भयता प्राप्त कर नहीं सकते। भयवृत्ति या त्रासकी भावनाको हम कुछ समय और कुछ हद तक छिपा या दबा सकते हैं। लेकिन जिस दम हमें भरोसा हो जाता है कि हमारे मारने और बचनेके साधन बेकार बने हैं, अुसी दम बहादुरसे बहादुर सेनापति और सिपाहीको भी शत्रुकी शरणमें जानेका ही मार्ग अपनाना पड़ता है, और अपने भविष्यके लिअे शत्रुकी कुलीनता, अुसकी असली सभ्यता और भूतकालमें स्वयं अुसके साथके अपने व्यवहारोंमें बरती गअी भलमनसाहत पर ही भरोसा करना पड़ता है। और, अनुभव यह है कि अैसी परिस्थिति अुत्पन्न होने पर शत्रुकी कुलीनता और असली सभ्यता अिस कारणसे जाग्रत नहीं होती कि हमारे पास कितने आला दर्जेके साधन थे और हमने अुनका कितना अुपयोग किया, बल्कि अिस वजहसे कि हमने कितनी निर्भयतासे खतरेका सामना किया।

## अुपसंहार

अिस सारी विचारधाराका सार यह है:

१. प्राकृतिक और दूसरे प्राणियोंसे अुत्पन्न होनेवाले भयोंसे मनुष्य बाह्य साधनोंकी सहायता द्वारा अेक हद तक अपनी रक्षा कर सकता है। लेकिन अुसके लिअे भी वैसे संकटोंका मुहावरा कर लेनेकी आदत तो डालनी ही पड़ती है। और, प्राणियोंके भयमें अुनके प्रति मनुष्यका अपना सद्व्यवहार भी अुपयोगी हो पड़ता है।

२. मनुष्यसे अुत्पन्न होनेवाले भयोंमें बाहरी साधनोंकी सहायता क़रीब-क़रीब बेकार सिद्ध होती है, और अुसमें शक्तिका निरर्थक व्यय है। अेक-दूसरेमें अविश्वास रखकर कोअी निर्भय बन ही नहीं सकता।

और, न भयसे भागनेकी वृत्ति ही किसीको निर्भय बना सकती है। अविश्वासके कारण होने पर भी विश्वास रखनेसे, संकटोंका सामना करनेकी आदत डालनेसे, और अपने सद्व्यवहारसे निर्भयता बढ़ सकती है। यह केवल निर्भयता और शूरवीरता बढ़ानेका ही अुपाय नहीं है, बल्कि आत्मरक्षा और मानव-संस्कृतिके विकासका भी यही अेक साधन है।

चोरी, सेंध, लूट, अत्याचार, लाठी, भाला, तलवार, बन्दूक, तोप, बम, हवाअी जहाज़ आदि-आदि हज़ारों तरहके अेक-से-अेक बढ़कर स्वजाति-नाशक साधनोंको बनानेमें और ताला, दरबान, पुलिस, जेल, फाँसी, ढाल, क़िला, खाअी, विमानभेदी तोप, बुर्का (मास्क) आदि अुतने ही प्रकारके रक्षाके साधन बनानेमें अनादि कालसे आज तक मानवजाति अपनी बुद्धि, शक्ति और धनका खर्च करती आअी है। अिसमें शक नहीं कि अिनमेंसे कुछ साधनोंके कारण वह प्रकृति और अन्य प्राणियोंसे अपनी रक्षा करनेमें पहलेसे अधिक सुरक्षित बनी है। लेकिन मानव-मानवके बीचके सम्बन्धोंमें तो अिनके कारण वह अधिकाधिक दलदलमें ही फँसती गअी है, और सुरक्षित बन ही नहीं सकी है; न कभी बन ही सकेगी। क्योंकि गलत रास्ते आप कितनी ही दूर क्यों न चले जायँ, मंजिल तक पहुँच नहीं पायेंगे, बल्कि भूप्रदक्षिणाकी तरह जिस दिशामें चले थे, अुसीमें चलते रहनेसे आखिर आप जहाँसे चले थे, वहीं वापस आ जायँगे। मानवी सम्बन्धोंमें तो आपसी अविश्वास, अुससे पैदा होनेवाले साधन, दुर्व्यवहार और भयकी कल्पना ही बड़े भय-स्थान हैं। अविश्वासका कारण रहने पर भी विश्वास करना, संकटोंका सामना करनेका अभ्यास बढ़ाना और अपने सद्व्यवहारसे अुत्पन्न होनेवाले आत्मविश्वास पर दृढ़ रहना निर्भयता प्राप्त करनेका साधन-मार्ग है, और स्वाभिमान, प्रतिष्ठा व कर्तव्य-भावनाका विकास तथा अुचित संगति अुसके सहायक साधन हैं।

सेवाग्राम, ४-२-'४२